कृषि विकास की नवीनतम तकनीकें

–डॉ.वीरेन्द्र कुमार

वर्तमान कृषि व्यवस्था में कृषि उत्पादन को अधिकतम करने, कृषि से होने वाली आय को बढ़ाने तथा जैविक और अजैविक दबावों के समाधान की आवश्यकता है ताकि किसानों का उत्साह कृषि में बना रहे। कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र को विकसित करने के लिए नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करने की सख्त जरूरत है। साथ ही, नवीनतम व विकसित तकनीक को किसानों तक पहुंचाने के लिए जोर देने की जरूरत हैं जिससे किसान नई तकनीकी को अपनाकर अधिक लाभ कमा सकें और अपना जीवन खुशहाल बना सकें। साथ ही देश तरक्की कर सके।

भारत की खाद्य, पोषण और आजीविका सुरक्षा के लिए कृषि आज भी महत्वपूर्ण बनी हुई है। पिछले दो दशकों से किसानों को फसलों की उपज में आए ठहराव, मृदा स्वास्थ्य में गिरावट, कृषि मदों की बढ़ती कीमतें और जलवायु परिवर्तन जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। इसके अलावा किसान घटती उत्पादकता, आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकी की कमी, फसल विविधिकरण की कमी और खेती से कम मुनाफा आदि का सामना कर रहे हैं। साथ ही अनुकूल बाजार परिस्थितियों की कमी, प्रभावी न्यूनतम समर्थन मूल्य का अभाव, उचित खरीद व्यवस्था का अभाव एवं उत्पादन के लिए सरल ऋण प्रक्रिया का अभाव, उचित भंडारण व्यवस्था की कमी एवं कटाई उपरांत उपर्युक्त प्रसंस्करण तकनीकी व उन्नत मशीनों का अभाव आदि कारक भी फसलों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। सामाजिक–आर्थिक कारण भी फसल उत्पादन को प्रभावित करते हैं। छोटे एवं सीमांत किसानों की आर्थिक स्थिति कमजोर होने के कारण खेती में प्रयोग होने वाले महंगे रासायनिक उर्वरक, कीटनाशी व उन्नतशील संकर बीज की खरीद उनकी पहुंच से बाहर होती है।

कृषि विकास को बढ़ावा देने के लिए हाल ही में रांची में भारतीय पादप जैव प्रौद्योगिकी संस्थान भी खोला गया है। इसके अलावा कृषि शिक्षा के विकास के लिए उत्तर प्रदेश के झांसी जिले मे केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय व झारखंड के हजारीबाग में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई है। गत वर्ष मौसम की मार ने किसानों को बेहाल कर दिया था। मानसून का मिजाज बिगड़ने का सीधा असर भारत की ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ता है। पिछले साल भी बेमौसम बारिश और ओलों के पड़ने से देश के ज्यादातर इलाकों में रबी की फसलें बर्बाद हो गई थी। तब

गेहूं, चना व सरसों की फसल को सबसे ज्यादा नुकसान पहुंचा था। गत वर्ष दिसंबर माह में सर्दी कम पड़ने से गेहूं व आलू उगाने वाले किसान परेशान थे। परन्तु जनवरी माह में नमीयुक्त और सर्द हवाओं ने रबी की फसलों के लिए संजीवनी का काम किया है। गेहूं की अच्छी वृद्धि और विकास के लिए जनवरी में 15 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा तापमान नहीं होना चाहिए। इसी प्रकार आलू की वृद्धि और विकास के लिए 10 डिग्री से कम न्यूनतम और 20 डिग्री से कम अधिकतम तापमान उपयुक्त होता है। साथ ही अधिक तापमान होने से कंदों की वृद्धि और फैलाव पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इन बदलावों से खाद्यान्न में हमारी आत्मनिर्भरता प्रभावित हो सकती है। इसकी वजह से पैदा हुई भयानक भुखमरी, कुपोषण, सूखा, फसलों की बर्बादी, अकाल, महंगाई, गरीबी, बेरोजगारी, सामाजिक असुरक्षा और मानसिक तनाव दुनिया के लिए अशांति और असुरक्षा की वजह बन जाते हैं।

खाद्य एवं कृषि सगंठन व अन्य राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के लिए मृदा और जल जैसे संसाधनों का सरंक्षण चिंता का विषय है। वर्तमान कृषि व्यवस्था में कृषि उत्पादन को अधिकतम करने, कृषि से होने वाली आय को बढ़ाने तथा जैविक और अजैविक दबावों के समाधान की आवश्यकता है, ताकि किसानों का उत्साह कृषि में बना रहे। कृषि एवं ग्रामीण क्षेत्र को विकसित करने के लिए नवीनतम तकनीकों का प्रयोग करने की सख्त जरूरत है जिनमें से प्रमुख कृषि तकनीकों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

पूसा एसटीएफआर मीटर – हाल ही में माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने फरवरी 2015 को राजस्थान के सूरतगढ़ में किसानों को मृदा स्वास्थ्य कार्ड देने की शुरुआत की है। इसी क्रम में सॉयल टेस्ट फर्टिलाइजर रिकमेंडेशन मीटर (पूसा एसटीएफआर मीटर) का आविष्कार किया गया है। हमारे देश की मृदाएं कई मुख्य व सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी से ग्रसित हैं। साथ ही कृषि जोतों की बड़ी संख्या होने के कारण मृदा परीक्षण सेवा पर्याप्त व सुगमता से उपलब्ध नहीं है। किसान भाई प्रायः वैज्ञानिक सिफारिशों के अभाव में रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक, असंतुलित व अंधाधुंध इस्तेमाल करते हैं। इससे न केवल उत्पादन लागत में बढ़ोतरी होती है, बल्कि शुद्ध लाभ में कमी तथा मृदा स्वास्थ्य में गिरावट आ जाती है। इस संबंध में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा पूसा सॉयल टेस्ट फर्टिलाइजर रिकमेंडेशन मीटर नामक यंत्र विकसित किया गया है। इसके द्वारा मृदा के पांच गुणों जैसे मृदा पी.एच., विद्युत चालकता, कार्बनिक कार्बन, मृदा में उपलब्ध फॉस्फोरस एवं पोटाश का निर्धारण किया जा सकता है। यह मृदा परीक्षण के साथ–साथ फसलों के लिए उर्वरकों की संस्तुति भी दर्शाता है। साथ ही इसका प्रयोग व कार्यविधि भी सरल व सुगम है। इसके प्रयोग के लिए केवल 2–3 दिन का प्रशिक्षण लेने के बाद किसान स्वयं ही मृदा परीक्षण कर सकते हैं। जहां अन्य मृदा परीक्षण किट मृदा गुणों की जानकारी केवल रंगों की गुणात्मक तुलना के आधार पर देते हैं, वही इस कलरीमीटर आधारित यंत्र से मृदा परीक्षण का सही–सही मात्रात्मक निर्धारण होता है। यह उन सभी क्षेत्रों के लिए अत्यधिक उपयोगी हैं जहां मृदा परीक्षण की सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं। ग्राम पंचायतें, सहकारी समितियां, किसान सेवा केन्द्र तथा गांवों में कार्यरत स्वयंसहायता समूह इसका उपयोग करके अपनी सेवाओं की गुणवत्ता में वृद्धि कर सकते हैं। इसके अलावा ग्रामीण शिक्षित बेरोजगार युवक / युवतियां इस उपकरण का उपयोग करके मिट्टी परीक्षण का व्यवसाय शुरू कर सकते हैं। पूसा संस्थान, नई दिल्ली में 19–21 मार्च, 2016 को किसान मेले इस उपकरण की प्रयोग विधि का जीवंत प्रदर्शन देखा जा सकता है।

अगेती आलू–पछेती गेहूं फसल प्रणाली – विश्व की सबसे ज्यादा उपयोग की जाने वाली सब्जियों में आलू का महत्वपूर्ण स्थान है। भारत में यह सबसे लोकप्रिय सब्जी है। आलू एक ऐसी सब्जी है, जिसे अधिकांश सब्जियों के साथ मिलाकर खाया जाता है। आलू को 'सब्जियों का राजा' भी कहा जाता है क्योंकि आलू में भरपूर औषधीय गुण समाहित हैं। आलू हमारे देश की महत्वपूर्ण सब्जी वाली फसलों में से एक है। भारत में आलू फसल विविधीकरण, ग्रामीण गरीबी उन्मूलन और खाद्य तथा पोषक सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। आलू एक अत्यधिक उत्पादित फसल है जो देश में प्रचलित विभिन्न फसल प्रणालियों के साथ समायोजित हो सकती है। कम अवधि में तैयार होने व भोजन देने के साथ–साथ आलू पूरी दुनिया में रोजगार देने में भी अग्रणी रहा है। आलू कम लागत में अधिक मुनाफा देने वाली फसल है। यही कारण है कि किसान भाई आलू की खेती करके जहां भरपूर मुनाफा कमाते हैं वहीं छोटे किसानों के लिए यह दोहरा फायदा देती है। हिमाचल प्रदेश के शिमला में केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान ने कुफरी श्रेणी की अगेती किस्में विकसित करके आलू क्रांति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। कुफरी सूर्या उत्तर–पश्चिम भारत के सिंचित मैदानी क्षेत्रों में आलू की अगेती बुवाई हेतु उपयुक्त है। यह प्रजाति 100–110 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। आलू की अगेती प्रजातियों जैसे कुफरी सूर्या की बुवाई 15–25 सितम्बर के मध्य कर देनी चाहिए। ये प्रजातियां गर्मी के प्रति सहनशील हैं। अगेती आलू दिसम्बर के अन्त तक पककर तैयार हो जाता है। इसकी उपज 200–250 कुन्तल प्रति हेक्टेयर मिल जाती है। खुदाई उपरान्त पछेती गेहूं के लिए बीज की मात्रा 125 कि. ग्रा. प्रति हेक्टेयर रखनी चाहिए। उत्तर–पश्चिम भारत के मैदानी क्षेत्रों के लिए गेहूं की पछेती प्रजातियों में

राज–3765, राज–3777, पी.बी.डब्ल्यू.–373, डब्ल्यू एच.1021, डी. बी.16, यू.पी.–2425, पी.बी.डब्ल्यू.–590, एच.डी.–2643 व डब्ल्यू. आर.–544 शामिल हैं।

परिशुद्ध खेती की जरूरत – वर्तमान परिवेश में बढ़ते शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और आधुनिकीकरण की वजह से कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल दिनों–दिन घटता जा रहा है। भविष्य में इसके बढ़ने की सम्भावना नगण्य है। देश की बढ़ती आबादी की खाद्यान्न आपूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का आवश्यकता से अधिक दोहन किया जा रहा है। जिसका नतीजा आज हम भूमि की उत्पादकता में ह्रास, भू–जल का गिरता स्तर, घटते जल स्रोतों, सिकुड़ती जैवविविधता, सूखे, बाढ़ों और जलवायु परिवर्तन के रूप में देख रहे हैं। यदि समय रहते हमने प्राकृतिक संसाधनों प्रमुख रूप से मृदा एवं जल संरक्षण पर विशेष जोर नहीं दिया तो भविष्य में गम्भीर खाद्य समस्या का सामना करना पड़ सकता है। इस सम्बन्ध में, मृदा उपजाऊपन एवं उत्पादकता बढ़ाने में परिशुद्ध खेती की महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। ''परिशुद्ध खेती'' सूचना तकनीकी पर आधारित कृषि विज्ञान की एक आधुनिक अवधारणा है जो पर्यावरण हितैषी, किसानों के लिए उपयोगी तथा उत्पादन बढ़ाने की सम्भावनाओं के साथ–साथ प्राकृतिक संसाधनों के ऊपर से दबाब को कम करने में सहायक है''। इसमें खेत की स्थानीय जानकारी प्राप्त करने के लिए अत्याधुनिक तकनीकों जैसे जी.आई.एस., जी.पी.एस., रिमोट सेंसिंग पद्धति एवं सूचना तकनीक का प्रयोग किया जाता है। उर्पयुक्त सभी तंत्रों से सूचना एकत्रित कर लागत साधनों की मात्रा निर्धारित की जाती है। परिशुद्ध खेती को स्थान विशेष कृषि के नाम से भी जाना जाता है। इसमें लागत साधनों का अत्यधिक क्षमता से उपयोग होता है। परिशुद्ध खेती में लागत साधनों जैसे खाद व उर्वरक, सिंचाई, कीटनाशियों और शाकनाशियों आदि को उस स्थान विशेष पर ही प्रयोग किया जाता है, जहां फसल को उनकी अत्यधिक आवश्यकता होती है। जबकि पारम्परिक खेती में किसान पूरे खेत में उपर्युक्त साधनों का समान रूप से प्रयोग करते हैं जिसमें न केवल संसाधनों का दुरुपयोग होता है बल्कि मृदा उत्पादकता में कमी व उत्पादन लागत में वृद्धि के साथ–साथ पर्यावरण को भी नुकसान पहुंचता है। आने वाले समय में खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाने के लिए उत्पादन लागत को घटाना तथा उपलब्ध संसाधनों जैसे उर्वरक, सिंचाई जल, कीटनाशी इत्यादि के बेहतर उपयोग को सुनिश्चित करते हुए मृदा उत्पादकता एवं उर्वरता को बनाए रखना नितांत आवश्यक है।

परम्परागत कृषि विकास योजना – हाल ही में जैविक खेती को बढ़ावा देने और कृषि रसायनों पर निर्भरता को कम करने के लिए परम्परागत कृषि विकास योजना की शुरुआत की गई है। इससे न केवल उच्च गुणवत्तायुक्त, स्वास्थ्यवर्घक एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थों की उपलब्घता बढ़ेगी, बल्कि खेती में उत्पादन लागत कम करने में भी मदद मिलेगी। साथ ही मृदा उर्वरता में सुघार के साथ–साथ किसानों की आमदनी में भी इजाफा होगा। किसानों को जैविक खेती के प्रति आकर्षित करने के लिए सरकार की ओर से अनेक योजनाएं चलायी जा रही हैं। इन योजनाओं के कारण ही जैविक खेती के अर्न्तगत क्षेत्रफल बढ़ रहा है। वर्ष 2003–04 में 42000 हेक्टेयर जैविक खेती का क्षेत्रफल था जो वर्ष 2013–14 में बढ़कर 7.23 लाख हेक्टेयर के लगभग पहुंच गया है।

खेसारी दाल की नई किस्मों का विकास – भारत में खेसारी दाल एक महत्वपूर्ण रबी फसल है। खेसारी दाल को 'गरीबों की दाल' भी कहा जाता है। खेसारी की फसल प्राकृतिक रूप से कठोर प्रकृति की है। अतः वातावरण की विपरीत परिस्थितियों में भी फसल प्रणाली में स्थायित्व प्रदान करने की क्षमता रखती है। खेसारी दाल की जो परम्परागत किस्में हैं, उसमें एक विषैला रसायन–बीटा एन आक्सलिल एल बीटा डाईएमिनोपिओनिक एसिड होता है। इसे ओड़ेप या ओडीएपी के नाम से भी जाना जाता है। कीमत में काफी कम होने के कारण महंगी दालों को न खरीद पाने वाले गरीब लोग उसे खा लिया करते थे। परन्तु जब इस दाल के कारण लोगों के नर्वस सिस्टम को नुकसान पहुंचने लगा और वह लकवे की चपेट में आने लगे तो सरकार ने खेसारी दाल को सेहत के लिए हानिकारक मानते हुए वर्ष 1961 में इस पर प्रतिबंध लगा दिया था। यद्यपि इस प्रतिबंध के बाद भी किसान गुपचुप तरीके से इसकी खेती करते रहे। साथ ही सस्ती दाल होने के कारण गरीब लोग इसका उपयोग करते रहे। कई दशकों बाद खेसारी दाल की खेती पर फिर चर्चा शुरू हो गई है। अब भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् (आई सी एम आर) ने इसकी तीन प्रजातियों को हरी झंडी दी है। खेसारी की इन किस्मों में नर्वस सिस्टम को नुकसान पहुंचाने वाले तत्वों की मात्रा बहुत कम है। इन तीनों किस्मों का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद

ने किया है। इन्हें रतन, प्रतीक और महातेओरा नाम दिए गए हैं। खेसारी की जो नई किस्में विकसित की गई हैं उनमें यह एसिड बहुत ही कम मात्रा में है। इनमें ओड़ेप की मात्रा 0.07 से 0.1 प्रतिशत के बीच है और यह मानवीय उपयोग के लिए सुरक्षित है। इन किस्मों को खेती के लिए जारी कर दिया गया है।

एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन – एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन से तात्पर्य यह है कि पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने वाले सभी संभव स्रोतों जैसे रासायनिक उर्वरक, जैविक खादें, जैविक उर्वरक, फसल अवशेष इत्यादि का कुशलतम समायोजन कर फसलों को संतुलित पोषण दिया जाए। एकीकृत पोषक तत्व प्रबंधन तकनीक पर्यावरण हितैषी और इनसे मुख्य पोषक तत्व भी पौधों को धीरे–धीरे व लम्बे समय तक प्राप्त होते रहते हैं। सघन फसल प्रणाली के अन्तर्गत फसलें मृदा से जितने पोषक तत्वों का अवशोषण करती हैं, उनकी क्षतिपूर्ति मृदा उर्वरता बनाए रखने के लिए अति आवश्यक है। पौधों को जिंक, लौह, तांबा, बोरोन, माल्ब्डिनम, मैगनीज व क्लोरीन की बहुत कम मात्रा में आवश्यकता होती है। यदि फसल अवशेष व अन्य जैविक खादों का नियमित प्रयोग होता रहे तो पौधों को इन तत्वों के अतिरिक्त पोटाश की भी कमी नहीं रहती है। फास्फोरस की कमी जीवाणु खाद द्वारा बीज का जीवाणु उपचार करके पूरी की जा सकती है। मिट्टी जांच के आधार पर सूक्ष्म पोषक तत्वों को प्रदान करने वाले उर्वरकों को मृदा में डालें या फसल पर छिड़काव करें। भारतीय मृदाओं में प्रमुख रूप से जिंक, आयरन, बोरोन व मैगनीज की कमी पाई जाती है। यह अनुमान लगाया गया है कि वर्ष 2020 तक खाद्यान्नों का लक्षित उत्पादन 320 करोड़ टन प्राप्त करने के लिए 2.88 करोड़ टन पोषक तत्वों की जरूरत होगी। जबकि रासायनिक उर्वरकों द्वारा इनकी कुल उपलब्धता 2.16 करोड़ टन होगी। इस प्रकार 72 लाख टन के अंतर को पूरा करने में पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने वाले अन्य स्रोतों जैसे जैविक खादें, जैविक उर्वरक, फसल अवशेष इत्यादि की महत्वपूर्ण भूमिका होगी। रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग जैविक खादों, जैविक उर्वरकों, फसल अवशेषों, हरी खादों, कम्पोस्ट एवं वर्मी कम्पोस्ट के साथ अच्छे परिणाम देता है। अतः भूमि की उर्वराशक्ति को बनाए रखने हेतु फसलों में रासायनिक उर्वरकों के साथ जैविक खादों एवं जैविक उर्वरकों का प्रयोग अवश्य करना चाहिए। इस तरह रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक व अनुचित प्रयोग को कम करने हेतु एकीकृत पोषण प्रबंधन की सलाह दी जाती है।

कृषि सूचना प्रौद्योगिकी – आज कृषि विश्वविद्यालयों/संस्थानों के कृषि सूचना प्रौद्योगिकी केन्द्रों के वैज्ञानिकों द्वारा उपयुक्त किस्मों के चुनाव, मौसम पूर्वानुमान पर आधारित फसल का आयोजन, फसल और फलोत्पादन प्रबंधन, नाशीजीव प्रबंधन, फसलोत्तर प्रबंधन और उत्पाद के विपणन के क्षेत्रों में प्रदान की गई परामर्शी सेवाओं से किसान लाभान्वित हुए हैं। वैज्ञानिको व विषय–वस्तु विशेषज्ञों द्वारा खेती के विभिन्न विषयों पर किसानों का मार्गदर्शन करने के लिए रेडियो/टी.वी वार्ताएं की जाती हैं। नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी किसानों को एक प्रभावी मंच उपलब्ध करती है, जहां वे वैज्ञानिकों, विकास एजेंसियों तथा कृषि फर्मों के साथ आपसी विचार–विमर्श कर अपनी समस्याओं को साझा कर सकेंगे और सीखने की क्षमता को बढ़ा सकेंगे। अत्याधुनिक सूचना प्रौद्योगिकियों के द्वारा खेती में उत्पादन लागत कम करने, पानी व ईंधन की बचत और संसाधन उपयोग दक्षता बढ़ाने के साथ–साथ किसानों की सामाजिक–आर्थिक दशाओं में भी सुधार हुआ है। फार्म उत्पादों की गुणवत्ता सुधारने में भी सूचना प्रौद्योगिकियां मददगार रही हैं। हाल के वर्षों में प्राकृतिक ससांधनों के डिग्रेडेशन को कम करने में नवीनतम सूचना प्रौद्योगिकी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। अन्ततः अग्रणी सूचना प्रौद्योगिकी मृदा स्वास्थ्य में सुधार करने, उत्पादकता बढ़ाने, अधिक लाभ, पर्यावरण प्रदूषण कम करने और ससांधन उपयोग दक्षता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका रखती है जो प्रत्यक्ष रूप से अरबों लोगों के लिए खाद्य असुरक्षा को कम कर सकती है। इसके माध्यम से न केवल किसानों की मानसिकता में क्रांतिकारी परिवर्तन आ रहे हैं बल्कि वे आर्थिक रूप से पहले से सम्पन्न हुए हैं। सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग मौसम सम्बंधी जानकारी, मृदा उर्वरता व उत्पादकता सम्बन्धी तथा भूमि सम्बन्धी रिकार्डों के कम्प्यूटरीकरण में भी किया जा रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी किसानों, वैज्ञानिकों और सरकार के मध्य सम्पर्क सेतु का कार्य करती है। इसके माध्यम से सरकारी योजनाओं और कृषि अनुसंधान सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचनाएं सीधे तौर पर किसानों तक पहुंचती हैं। किसानों के कल्याण और उनकी प्रगति के लिए कृषि सूचना प्रौद्योगिकी सेवा को दुरुस्त करने की जरूरत है।

फसल अवशेष प्रबन्धन – उत्तर–पश्चिम भारत में धान–गेहूं फसल चक्र के अन्तर्गत फसल अवशेषों का प्रयोग आम बात है। कृषि में मशीनीकरण और बढ़ती उत्पादकता की वजह से फसल अवशेषों की अत्यधिक मात्रा उत्पादित होती जा रही है। फसल कटाई उपरांत दाने निकालने के बाद प्रायः किसान भाई फसल अवशेषों को जला देते हैं। पंजाब, हरियाणा और पश्चिम उत्तर प्रदेश के साथ–साथ देश के अन्य भागों में भी यह काफी प्रचलित है। फसल अवशेषों के जलाए जाने से निकलने वाले धुएं से पर्यावरण प्रदूषण तो बढ़ता ही है। साथ ही धुएं की वजह से हृदय और फेफड़े से जुड़ी बीमारियां भी बढ़ती हैं। धुएं में कार्बन–डाई–आक्साइड, कार्बन–मोनो–आक्साइड और पार्टिकुलेट जैसे हजारों हानिकारक तत्व मिले हो सकते हैं जिनमें व्यक्ति की सेहत

को बुरी तरह से नुकसान पहुंचाने की क्षमता होती है। फसल अवशेषों का प्रयोग जैविक खेती में करके मृदा में कार्बनिक कार्बन की मात्रा में सुधार किया जा सकता है। इसी प्रकार सब्जियों के फल तोड़ने के बाद इनके तने, पत्तियां और जड़ें खेत में रह जाती हैं जिनको जुताई करके मृदा में दबाने से खेत के उपजाऊपन में सुधार होता है। यद्यपि फसल अवशेष का पोषक तत्व प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान है। परन्तु अधिकांशतः फसल अवशेषों को खेत में जला दिया जाता है या खेत से बाहर फेंक दिया जाता है। फसल अवशेष पौधों को पोषक तत्व प्रदान करने के साथ–साथ मृदा की भौतिक, रासायनिक और जैविक क्रियाओं पर भी अनुकूल प्रभाव डालते हैं। फसल अवशेष क्षारीय मृदाओं के पी.एच. को कम करके उन्हें खेती योग्य बनाने में भी मदद करते हैं।

अत्याधुनिक कृषि यंत्र रोटावेटर – जिस तरह फसल उत्पादन बढ़ाने के लिए नवीनतम तकनीक, उन्नतशील प्रजातियां और फसल संरक्षण आवश्यक है, ठीक उसी तरह खेती में आधुनिकतम कृषि यंत्रों का प्रयोग भी अति महत्वपूर्ण है। उन्नत कृषि यंत्रों का प्रयोग मानव श्रम को कम करने तथा कार्य की गुणवत्ता, समय एवं ऊर्जा की बचत के लिए होता है। आज खेती के अधिकांश काम मशीनों से किए जाते हैं। फसलों की बुवाई के लिए दो–तीन बार हल से जुताई, फिर डिस्क हैरो द्वारा जुताई तथा अंत में खेत को समतल करने के लिए पटेला चलाया जाता है। इन सबके स्थान पर खेत तैयार करने के लिए रोटावेटर का प्रयोग किया जा सकता है। यह एक अति उन्नत किस्म का जुताई यंत्र है। यह एक बार डिस्क–हैरो तथा दो बार कल्टीवेटर के बराबर की जुताई एक ही बार में करता है। इसके द्वारा धान की रोपाई हेतु पडलिंग भी की जा सकती है। इस मशीन से 50 से 60 प्रतिशत समय और 40 से 60 प्रतिशत ऊर्जा की बचत होती है। मिट्टी के बड़े–बड़े ठेलों को काटकर एक ही बार में भुरभुरा तथा बुवाई हेतु उपयुक्त बना देती है। यह मशीन खरपतवारों को भी जड़ से उखाड़ने का काम करती है। यह फसल के डंठलों व अवशेषों को खाद में परिवर्तित करने में मदद करती है। एक हेक्टेयर खेत की जुताई हेतु लगभग 3.6 घंटे का समय लगता है एवं खेत तैयार करने की लागत लगभग 800 रुपये प्रति हेक्टेयर आती है। इसकी अनुमानित कीमत 74,000 से 160,000 रुपये है।

फर्टिगेशन – यह शब्द 'उर्वरक' और 'सिंचाई' दो शब्दों से मिलकर बना है। ड्रिप सिंचाई प्रणाली में जल के साथ–साथ उर्वरकों को भी पौधों तक पहुंचाना 'फर्टिगेशन' कहलाता है। फर्टिगेशन द्वारा उर्वरकों को कम मात्रा में और कम अंतराल पर पूर्वनियोजित सिंचाई के साथ दे सकते हैं। इससे उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ने के साथ–साथ पौधों को आवश्यकतानुसार पोषक तत्व मिल जाते हैं। साथ ही महंगे उर्वरकों का अपव्यय भी कम होता है। इस विधि से जल और उर्वरक पौधों के मध्य न पहुंचकर सीधे पौधों की जड़ों तक पहुंचते हैं। इसलिए फसल में खरपतवार भी कम पनपते हैं।

एकीकृत कृषि प्रणाली – खेती में लगातार एक ही प्रकार की फसलें उगाने व एक ही तरह के आदानों का प्रयोग करने से न केवल फसलों की पैदावार में कमी आई बल्कि उनकी गुणवत्ता में भी गिरावट दर्ज की गई। एक फसल प्रणाली न तो आर्थिक दृष्टि से लाभदायक है, और न ही पारिस्थितिकी दृष्टि से अधिक उपयोगी है। अतः फार्म पर धान्य फसलों के साथ दलहन फसलें, बागवानी फसलें, पशुपालन, मछली पालन व मधुमक्खी पालन को भी अपनाना चाहिए जिससे यदि किसी वर्ष मुख्य फसल नष्ट हो जाए तो अन्य कृषि व्यवसाय किसानों की आमदनी का स्रोत बन जाते हैं। साथ ही एकीकृत कृषि प्रणाली में प्राकृतिक संसाधनों का भी उचित उपयोग होता है। इसके अलावा किसान मांग और आपूर्ति में होने वाले परिवर्तनों के परिणामस्वरूप मूल्यों में उतार–चढ़ाव से कम प्रभावित होते हैं। एकीकृत कृषि प्रणाली से खेत में जैविक समृद्धि भी लायी जा सकती है। इस प्रकार एकीकृत कृषि प्रणाली को अपनाकर खेती को टिकाऊ बनाया जा सकता है। एकीकृत कृषि प्रणाली का मुख्य लक्ष्य ग्रामीण पर्यावरण एवं मृदा स्वास्थ्य का बचाव और उच्च कृषि बढ़वार बनाए रखने, ग्रामीण रोजगार सृजन व बेहतर आर्थिक लाभ पाने हेतु कृषि – बागवानी – मत्स्यिकी – वानिकी – पशुधन प्रणाली के पक्ष में अनुकूल स्थितियां पैदा करना है। एकीकृत कृषि प्रणाली व विविधिकृत फसल चक्र कीट तथा व्याधियों के प्रकोप को कम करते हैं। दलहन, तिलहन और चारे की अधिकांश फसलें एवं उनकी प्रजातियां कम अवधि की हैं। साथ ही ये फसलें प्रकाश की अवधि के प्रति असंवेदनशील हैं। ये कम अवधि वाली फसलें फसल प्रणालियों की फसल सघनता व लाभ बढ़ाने में सहायक हैं। अतः एकीकृत कृषि प्रणाली की तकनीकी और कार्यप्रणाली को किसानों तक पहुंचाकर देश में खाद्यान्न उत्पादन और संसाधनों की मात्रा व उनकी गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। लघु व सीमांत किसानों के लिए बरानी क्षेत्रों में जोखिम कम कर अधिक आय लेने के लिए एकीकृत कृषि प्रणाली एक आवश्यक कदम और समय की भी मांग है। साथ ही, नवीनतम व विकसित तकनीक को किसानों तक पहुंचाने के लिए जोर देने की जरूरत है। जिससे किसान नई तकनीकी को अपनाकर अधिक लाभ कमा सकें और अपना जीवन खुशहाल बना सकें। साथ ही देश तरक्की कर सके।

(लेखक जल प्रौद्योगिकी केन्द्र, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में कार्यरत हैं।)
ई–मेलः v.kumarnovod@yahoo.com